# राजर्षि
# भाग 2

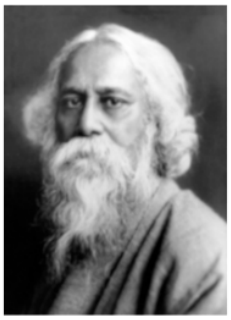

रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी ADDA

# राजर्षि

# भाग 2

https://www.hindiadda.com/rajarshi-part-ii/

जयसिंह उसके अगले दिन मंदिर में लौट कर आया। अब तक पूजा का समय निकल चुका है। रघुपति दुखी चेहरा लिए अकेला बैठा है। इसके पहले कभी ऐसा नियम भंग नहीं हुआ था।

जयसिंह गुरु के निकट न जाकर अपने बगीचे में चला गया। अपने पेड़-पौधों के बीच जाकर बैठ गया। वे उसके चारों ओर काँपने लगे, दोलायमान होने लगे, छाया नचाने लगे। उसके चारों ओर है, पुष्प खचित पल्लवों की सतह, श्यामल सतह के ऊपर सतह, छाया भरे सुकोमल स्नेह का आच्छादन, सुमधुर आह्वान, प्रकृति का प्रीतिपूर्ण आलिंगन। यहाँ सभी प्रतीक्षा करते हैं, कोई बात पूछता नहीं, भावना में व्याघात उत्पन्न नहीं करता, माँगने पर ही माँगता है, बात करने पर ही बात करता है। इस नीरव श्रवणेच्छा के वातावरण में, प्रकृति के इस अंत:पुर में बैठ कर जयसिंह सोचने लगा। राजा ने उसे जो सीख दी है, मन-ही-मन उस पर विचार करने लगा।

उसी समय रघुपति ने धीरे-धीरे आकर उसकी पीठ पर हाथ रखा। जयसिंह चौंक उठा। रघुपति उसके निकट बैठ गया। जयसिंह के चेहरे की ओर देख कर काँपते स्वर में बोला, "वत्स, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों देख रहा हूँ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम धीरे-धीरे मुझसे दूर होते जा रहे हो?"

जयसिंह ने कुछ कहने की चेष्टा की, रघुपति उसे रोकते हुए बोलता रहा, "क्या एक पल के लिए भी मेरे प्रेम में कमी देखी है? क्या मैंने तुम्हारा कोई अपराध किया है, जयसिंह? अगर किया है, तो मैं तुम्हारा गुरु, तुम्हारा पितृ तुल्य, मैं तुमसे क्षमा की भिक्षा माँग रहा हूँ - मुझे क्षमा करो।"

जयसिंह वज्राहत के समान चौंक पड़ा; गुरु के चरण पकड़ कर काँपने लगा; बोला, "पिता, मैं कुछ नहीं जानता, मैं कुछ नहीं समझ पाता, मैं कहाँ जा रहा हूँ, देख नहीं पा रहा हूँ।"

रघुपति ने जयसिंह का हाथ पकड़ कर कहा, "वत्स, मैंने तुम्हें तुम्हारे बचपन से माँ के समान प्यार से पाला है, पिता से अधिक प्रयत्न के साथ शास्त्र-शिक्षा दी है - तुम पर पूरा विश्वास रखते हुए मित्र के समान तुम्हें अपनी समस्त मंत्रणाओं में सहभागी बनाया है। आज मुझसे कौन तुम्हें छीने ले रहा है? इतने दिन का स्नेह ममता का बंधन कौन तोड़े डाल रहा है? मुझे तुम पर जो देव-प्रदत्त अधिकार प्राप्त है, उस पवित्र

अधिकार में कौन हस्तक्षेप कर रहा है? बोलो, वत्स, उस महापातकी का नाम बताओ।"

जयसिंह ने कहा, "प्रभु, मुझे आपसे किसी ने अलग नहीं किया - आप ही ने मुझे दूर कर दिया है। मैं घर के भीतर था, आप ही ने सहसा मुझे रास्ते में निकाल दिया है। आपने कहा, कौन है पिता, कौन है माता, कौन है भाई! आपने कहा, संसार में कोई बंधन नहीं, स्नेह-प्रेम का पवित्र अधिकार नहीं। जिन्हें माँ के रूप में जानता था, आपने उन्हें कह दिया शक्ति - जो जहाँ हिंसा कर रहा है, जो जहाँ रक्तपात कर रहा है, जहाँ भी भाई-भाई में विवाद है, जहाँ भी दो मनुष्यों के बीच युद्ध है, वहीं यह प्यासी शक्ति रक्त की लालसा में अपना खप्पर लिए खड़ी है। आपने मुझे माँ की गोद से यह किस राक्षसी के देश में निर्वासित कर दिया!"

रघुपति बहुत देर तक स्तंभित बैठा रहा। अंत में निश्वास छोड़ते हुए बोला, "तब तुम स्वाधीन हुए, बंधन से मुक्त हुए, मैंने तुम पर से अपना समस्त अधिकार वापस ले लिया। यदि तुम इसमें ही सुखी होओ, तो वैसा ही हो।"

कह कर उठने को तैयार हो गया।

जयसिंह उनके पैर पकड़ कर बोला, "नहीं नहीं नहीं प्रभु - आपके दवारा मुझे छोड़ दिए जान पर भी, मैं आपको नहीं छोड़ सकता। मैं रहा - आपके चरणों में ही रहा, आप जो चाहें, करें। आपके मार्ग के अलावा मेरा कोई अन्य मार्ग नहीं।"

रघुपति ने जयसिंह को आलिंगन में भर लिया - उसके आँसू बहते हुए जयसिंह के कंधे पर टपकने लगे।

तेरहवाँ परिच्छेद

मंदिर में अनेक लोग एकत्र हो गए हैं। खूब कोलाहल हो रहा है। रघुपति ने रूखे स्वर में पूछा, "तुम लोग क्या करने आए हो?"

वे नाना कण्ठों में बोल पडे, "हम लोग ठकुराइन(देवी के काली रूप को ठकुराइन भी कहा जाता है) के दर्शनों के लिए आए हैं।"

रघुपति बोला, "कहाँ हैं ठकुराइन? ठकुराइन इस राज्य से चली गई हैं। तुम लोग कहाँ रख पाए ठकुराइन को! वे चली गई हैं।"

भारी शोर-शराबा होने लगा, नाना ओर से नाना बातें सुनाई पडने लगीं।

"यह क्या बात है ठाकुर?"

"हमने क्या अपराध किया है ठाकुर?"

"क्या माँ किसी भी तरह प्रसन्न नहीं होंगी?"

"मेरा भतीजा बीमार था, इसी कारण मैं कुछ दिन पूजा करने नहीं आया।" (उसका दृढ़ विश्वास है कि उसी की उपेक्षा न सह पाने के कारण देवी देश छोड़ रही हैं।)

"सोचा था, अपने दो पाठे ठकुराइन को चढाऊँगा, किन्तु बहुत दूर होने के कारण नहीं आ पाया।" *(दो पाठे चढाने में हुई देरी के कारण राज्य का ऐसा अमंगल हुआ, यही सोच कर वह कातर हो रहा था।)*

"ठीक है, गोवर्धन ने जो मन्नत माँगी थी, वह माँ को नहीं दे पाया, लेकिन माँ ने भी तो उसे वैसा ही दण्ड दे दिया। उसकी तिल्ली बढ़ कर ढाक हो गई है, वह छह महीने से बिस्तर पर पड़ा है।" *(गोवर्धन अपनी बढ़ी तिल्ली को लेकर चिता पर चढ़ जाए, किन्तु माँ देश में रहें - उसने मन में ऐसी प्रार्थना की। सभी अभागे गोवर्धन की तिल्ली के अत्यधिक बढ़ जाने की कामना करने लगे।)*

भीड़ में एक लम्बा-चौड़ा आदमी था, उसने सभी को धमका कर चुप करा दिया और रघुपति से हाथ जोड़ कर बोला, "ठाकुर, माँ क्यों चली गईं, हमसे क्या अपराध हो गया था?"

रघुपति ने कहा, "तुम लोग माँ को एक बूँद रक्त नहीं चढ़ा सकते, यही तो है तुम लोगों की भक्ति!"

सब चुप रहे। अंत में बातें होने लगीं। कोई फुसफुसा कर कहने लगा, "राजा की ओर से मनाही है, हम लोग क्या करें!"

जयसिंह पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल बैठा था। 'माँ की ओर से मनाही है' यह बात विद्युत गति से उसकी जिह्वा पर आई थी; लेकिन उसने अपने को दबा लिया, एक बात तक नहीं कही।

रघुपति तेज आवाज में बोला, "राजा कौन है! माँ का सिंहासन क्या राजा के सिंहासन से नीचा है? तब तुम लोग अपने राजा को लेकर इस मातृहीन देश में रहो। देखता हूँ, कौन तुम्हारी रक्षा करता है!"

जनता के बीच गुन गुन शब्द उठा। सभी सावधान होकर बातें करने लगे।

रघुपति खड़ा होकर बोला, "राजा को ही बड़ा बना कर तुम लोगों ने राजा के द्वारा अपनी माँ का अपमान करवा कर विदा कर दिया। मत समझना, सुखी रहोगे। और तीन बरस के बाद इतने बड़े राज्य में तुम लोगों की घर बनाने की जमीन का निशान तक नहीं रहेगा - तुम लोगों के खानदान में कोई दीया जलाने वाला नहीं बचेगा।"

जन-सागर में गुन गुन शब्द धीरे-धीरे फैलने लगा। जनता भी लगातार बढ़ रही है। उसी लंबे आदमी ने हाथ जोड़ कर रघुपति से कहा, "संतान अगर अपराध करे, तो माँ उसे दण्ड दे, लेकिन माँ संतान को एकदम छोड़ कर चली जाए, क्या ऐसा कभी हो सकता है! प्रभु, बोलिए, क्या करने से माँ लौटेंगी।"

रघुपति ने कहा, "जब तुम्हारा यह राजा इस राज्य से बाहर हो जाएगा, तब माँ भी पुन: इस राज्य में पदार्पण करेंगी।"

यह बात सुन कर जनता की गुन गुन ध्वनि अचानक थम गई। हठात चारों ओर गहरी निस्तब्धता छा गई, अंत में आपस में एक-दूसरे के चेहरे की ओर देखने लगे; कोई हिम्मत जुटा कर बात नहीं कह पाया।

रघुपति ने मेघमन्द्र स्वर में कहा, "तो, तुम लोग देखोगे! आओ, मेरे साथ आओ। बहुत दूर से बड़ी आशा लेकर तुम लोग ठकुराइन के दर्शन को आए हो - चलो, एक बार मंदिर में चलो।"

सभी डरते हुए मंदिर के प्रांगण में एकत्र हो गए। मंदिर का द्वार बंद था, रघुपति ने धीरे-धीरे द्वार खोल दिया।

कुछ देर तक किसी के मुँह से भी बात नहीं निकली। प्रतिमा का मुख दिखाई नहीं पड़ रहा है, प्रतिमा का पृष्ठ भाग दर्शकों की ओर है। माँ विमुख हो गई हैं। सहसा जनता में क्रंदन ध्वनि गूँज उठी, "एक बार घूम कर खड़ी हो जाओ, माँ! हमने क्या अपराध किया है!" चारों ओर "माँ कहाँ है, माँ कहाँ है" स्वर गूँजने लगा। प्रतिमा पाषाण की होने के कारण नहीं घूमी। अनेक लोग मूर्छित हो गए। बालक कुछ न समझने के

कारण रोने लगे। वृद्ध मातृहारा शिशु के समान रोने लगे, "माँ, ओ माँ!" स्त्रियों का घूँघट खुल गया, आँचल खिसक गया, वे छाती पर हाथ मारने लगीं। युवक काँपती हुई ऊँची आवाज में कहने लगे, "माँ, हम लोग तुम्हें लौटा कर लाएँगे - हम तुम्हें छोड़ेंगे नहीं।"

एक पागल गाने लगा -

माँ मेरी पत्थर की कन्या

संतान पर दृष्टि नहीं डालती।

पूरा राज्य मानो मंदिर के दरवाजे पर खड़ा होकर "माँ" "माँ" पुकारते हुए विलाप करने लगा - लेकिन मूर्ति नहीं घूमी। मध्याह्न का सूर्य प्रखर हो आया, प्रांगण में भूखी जनता का विलाप नहीं थमा।

तब जयसिंह ने काँपते पैरों से आकर रघुपति से कहा, "प्रभु, क्या मैं एक बात भी नहीं कह सकता?"

रघुपति ने कहा, "नहीं, एक बात भी नहीं।"

जयसिंह बोला, "क्या संदेह का कोई कारण नहीं है?"

रघुपति ने दृढ़ स्वर में कहा, "नहीं।"

जयसिंह ने मुट्ठियाँ कस कर बाँधते हुए कहा, "क्या सब कुछ पर विश्वास करूँ?"

रघुपति ने तीव्र दृष्टि से जयसिंह को दग्ध करते हुए कहा, "हाँ।"

जयसिंह छाती पर हाथ रख कर बोला, "मेरी छाती फटी जा रही है।"

वह जनता के बीच से दौड़ते हुए बाहर निकल गया।

चौदहवाँ परिच्छेद

उसके अगले दिन आषाढ़ की उनतीसवीं तिथि। आज रात चतुर्दश देवताओं की पूजा है। आज जब प्रभात में ताड़-वन की ओट से सूरज उठ रहा है, तो पूर्व दिशा में बादल नहीं हैं। जब जयसिंह स्वर्णकिरणों से भरे आनंदमय कानन में जाकर बैठा, तो उसकी सारी पुरानी स्मृतियाँ मन में जागने लगीं। इसी वन में, इसी पाषाण के मंदिर की

पत्थर की सीढ़ियों पर, इसी गोमती के तट पर, इसी विशाल वट की छाया में, इसी छाया से घिरे पोखर के किनारे उसे अपना बाल्य-काल सुमधुर स्वप्न की भाँति याद आने लगा। जो सम्पूर्ण मधुर दृश्य उसके बाल्य-काल को स्नेहपूर्वक घेरे रहते थे, वे आज हँस रहे हैं, उसे आज पुन: बुला रहे हैं, परन्तु उसका मन कह रहा है, 'मैं आज यात्रा पर बाहर निकल आया हूँ, मैंने विदा ले ली है, मैं और नहीं लौटूँगा।' स्फटिक के मंदिर पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं तथा उसकी बाईं ओर की दीवार पर बकुल की शाखाओं की कम्पित छाया पड़ रही है। बचपन में जिस प्रकार यह स्फटिक-मंदिर सचेतन अनुभव होता था, इन सीढ़ियों पर बैठ कर खेलते समय सीढ़ियों में जैसा संग-साथ पाता था, आज प्रभात की सूर्य-किरणों में मंदिर को वैसा ही सचेतन, उसकी सीढ़ियों को उसी प्रकार शैशव की आँखों से देखने लगा। मंदिर के भीतर माँ आज फिर से माँ के रूप में अनुभव होने लगी। किन्तु अभिमान में उसका हृदय भर आया, उसकी दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे।

रघुपति को आता देख जयसिंह ने आँसू पोंछ डाले। गुरु को प्रणाम करके खड़ा हो गया। रघुपति ने कहा, "आज पूजा का दिन है। याद है, माँ के चरण स्पर्श करके क्या शपथ ली थी?"

जयसिंह ने कहा, "है।"

रघुपति - "शपथ का पालन तो करोगे? "

जयसिंह - "हाँ।"

रघुपति - "देखो वत्स, काम सावधानी से करना। विपत्ति की आशंका है। मैंने तुम्हारी रक्षा के लिए ही प्रजा को राजा के विरुद्ध भड़का दिया है।"

जयसिंह चुपचाप रघुपति के चेहरे की ओर देखता रहा, कोई उत्तर नहीं दिया; रघुपति उसके सिर पर हाथ रख कर बोला, "मेरे आशीर्वाद से तुम निर्विघ्न अपना कार्य संपन्न कर पाओगे, माँ का आदेश पालन कर सकोगे।"

इतना कह कर चला गया।

राजा अपराह्न में एक कक्ष में बैठे ध्रुव के साथ खेल रहे हैं। ध्रुव के आदेश के अनुसार एक बार मुकुट सिर से उतार रहे हैं, एक बार धारण कर रहे हैं; ध्रुव महाराज की यह दुर्दशा देख कर हँस-हँस कर बेहाल हो रहा है। राजा तनिक हँस कर बोले, "मैं अभ्यास

कर रहा हूँ। यह मुकुट उनके आदेश पर जिस प्रकार सहजता से धारण कर पाया हूँ, इस मुकुट को उनके आदेश पर उतनी ही सहजता से उतार भी पाऊँ। मुकुट धारण करना कठिन है, लेकिन मुकुट त्यागना और भी कठिन है।"

सहसा ध्रुव के मन में एक विचार आया - कुछ देर राजा के मुकुट की ओर देख कर मुँह में उँगली डाल कर बोला, "तुमि आजा।" राजा शब्द से 'र' अक्षर एकदम से समूल लोप कर देने पर भी ध्रुव के मन में जरा भी पश्चात्ताप उत्पन नहीं हुआ। राजा के मुँह पर राजा को आजा बोल कर उसे सम्पूर्ण आत्म-सुख मिला।

राजा ध्रुव की इस धृष्टता को सहन न कर पाने के कारण बोले, "तुमि आजा।"

ध्रुव बोला, "तुमि आजा।"

इस विषय में बहस का अंत नहीं हुआ। किसी पक्ष में कोई प्रमाण नहीं है, बहस केवल धींगामुश्ती की है। अंत में राजा ने अपना मुकुट लेकर ध्रुव के सिर पर पहना दिया। तब ध्रुव के पास और बात कहने का उपाय नहीं बचा, उसकी पूरी तरह हार हो गई। ध्रुव का आधा चेहरा उस मुकुट के नीचे छिप गया। मुकुट के साथ विशाल सिर को हिलाते हुए ध्रुव ने मुकुटहीन राजा को आदेश दिया, "एक कहानी सुनाओ।"

राजा ने कहा, "कौन-सी कहानी सुनाऊँ?"

ध्रुव बोला, "दीदी वाली कहानी सुनाओ।"

ध्रुव कहानी मात्र को ही दीदी की कहानी के रूप में जानता था। वह समझता था, दीदी जो कहानियाँ सुनाती थी, उनके अलावा संसार में और कहानी ही नहीं है। राजा एक भारी पौराणिक कहानी लेकर बैठ गए। वे कहने लगे, "हिरण्यकश्यपु नामक एक राजा था।"

राजा सुन कर ध्रुव बोल उठा, "आमी आजा।" विशाल ढीले मुकुट के बल पर उसने हिरण्यकश्यपु के राजपद को पूरी तरह अस्वीकृत कर दिया।

चाटुकार सभासद के समान गोविन्दमाणिक्य उस किरीटी शिशु को संतुष्ट करने के लिए बोले, "तुम भी आजा, वह भी आजा।"

ध्रुव उसमें भी स्पष्ट रूप से असहमति प्रकट करते हुए बोला, "ना, आमी आजा।"

अंत में जब महाराज ने कहा, "हिरण्यकशिपु आजा नय, से आक्कस" *(*हिरण्यकश्यपु राजा नहीं था*,* वह राक्षस था।*)* तब ध्रुव ने उसमें कुछ आपत्ति करने लायक नहीं पाया।

ऐसे ही समय नक्षत्रराय ने कक्ष में प्रवेश किया - बोला, "सुना है, महाराज ने मुझे राज-कार्य के लिए बुलाया है। आदेश के लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

राजा ने कहा, "थोड़ी और प्रतीक्षा करो, कहानी पूरी कर दूँ।" कह कर कहानी पूरी की। "आक्कस दुष्ट" - कहानी सुन कर ध्रुव ने संक्षेप में इसी प्रकार का मत प्रकट किया।

ध्रुव के सिर पर मुकुट देख कर नक्षत्रराय को अच्छा नहीं लगा। जब ध्रुव ने देखा कि नक्षत्रराय की दृष्टि उसी पर जमी हुई है, तो उसने नक्षत्रराय को गंभीरता के साथ जता दिया, "आमी आजा।"

नक्षत्रराय बोला, "छी, ऐसी बात नहीं कहते।" कह कर ध्रुव के सिर से मुकुट उतार कर राजा के हाथ में देने को हुआ। ध्रुव मुकुट-हरण की संभावना देख कर सचमुच के राजा के समान चिल्ला पड़ा। गोविन्दमाणिक्य ने आसन्न विपत्ति से उसका उद्धार किया, नक्षत्र को रोक दिया।

अंत में गोविन्दमाणिक्य ने नक्षत्रराय से कहा, "सुना है, रघुपति ठाकुर बुरे उपायों से प्रजा में असंतोष भड़का रहा है। तुम स्वयं नगर में जाकर इस विषय में तहकीकात कर आओ और सच-झूठ का निर्णय करके मुझे सूचित करो।"

नक्षत्रराय ने कहा, "जो आज्ञा।" कह कर चला गया, किन्तु ध्रुव के सिर पर मुकुट उसे किसी भी तरह अच्छा नहीं लगा।

प्रहरी ने आकर सूचना दी, "पुरोहित ठाकुर का सेवक, जयसिंह भेंट करने की प्रार्थना लिए द्वार पर खड़ा है।"

राजा ने उसे आने की अनुमति प्रदान की।

जयसिंह राजा को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोला, "महाराज, मैं सुदूर देश को जा रहा हूँ। आप मेरे राजा हैं, मेरे गुरु हैं, आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ।"

राजा ने पूछा, "कहाँ जाओगे जयसिंह?"

जयसिंह बोला, "पता नहीं महाराज, वह कहाँ है, कोई नहीं कह सकता।"

राजा को बात कहने को तैयार देख कर जयसिंह ने कहा, "महाराज, मना मत कीजिए। आपके निषेध करने पर मेरी यात्रा शुभ नहीं होगी; आशीर्वाद दीजिए, यहाँ मेरा जो संशय था, वह समस्त संशय वहाँ दूर हो जाए। यहाँ के बादल, वहाँ छँट जाएँ। आपके समान राजा के राजत्व में जाऊँ, शान्ति पाऊँ।"

राजा ने पूछा, "कब जाओगे?"

जयसिंह ने कहा, "आज शाम को। अधिक समय नहीं है महाराज, तो मैं आज विदा लेता हूँ।"

कहते हुए राजा को प्रणाम करके राजा की चरण-धूलि ग्रहण की, राजा के चरणों पर दो बूँद आँसू टपक पड़े।

जयसिंह जब उठ कर जाने को हुआ, तो ध्रुव धीरे-धीरे जाकर उसका कपड़ा पकड़ कर बोला, "तुम मत जाओ।"

जयसिंह हँसते हुए घूम कर खड़ा हो गया, ध्रुव को गोद में उठा लिया, उसे चूमते हुए बोला, "किसके पास रहूँगा, बेटा? मेरा कौन है?"

ध्रुव ने कहा, "आमी आजा।"

जयसिंह ने कहा, "तुम लोग राजा के राजा हो, तुमने ही सबको बंदी बना कर रख छोड़ा है।"

ध्रुव को गोद से उतार कर जयसिंह कक्ष से बाहर निकल गया। महाराज गंभीर मुद्रा में बहुत देर तक सोचते रहे।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

चतुर्दशी तिथि। बादल भी छाए हैं, चन्द्रमा भी निकला है। आकाश में कहीं आलोक है, कहीं अंधकार। कभी चन्द्रमा निकल रहा है, कभी चन्द्रमा छिप रहा है। गोमती के किनारे वाला जंगल चन्द्रमा की ओर देख कर अपनी गहन अंधकार-राशि का मर्म भेद कर बीच-बीच में निश्वास छोड़ रहा है।

आज रात लोगों का बाहर मार्ग में निकलना निषिद्ध है। रात में मार्ग में निकलता भी कौन है! लेकिन निषेध है, इस कारण आज मार्ग की विजनता और भी गहन प्रतीत हो रही है। समस्त नगरवासियों ने अपने घर के दीपक बुझा कर द्वार बंद कर

लिए हैं। मार्ग में कोई प्रहरी नहीं है। चोर भी आज मार्ग में नहीं निकले हैं। जिन्हें शव-दाह हेतु श्मशान में जाना है, वे शवों को घर में रखे प्रभात होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिनके घरों में मृत्युमुखी संतान पड़ी है, वे वैद्य को बुलाने बाहर नहीं निकले हैं। जो भिक्षुक मार्ग के किनारे वृक्ष के नीचे सोता था, उसने आज गृहस्थ की गोशाला में आश्रय ले लिया है।

रात्रि में श्रृगाल-श्वान नगर के मार्गों पर विचरण कर रहे हैं, एक-दो चीते गृहस्थों के द्वार पर आकर झाँक रहे हैं। मनुष्यों में आज केवल मात्र एक व्यक्ति घर के बाहर है - और कोई मनुष्य नहीं। वह नदी किनारे पत्थर पर एक छुरी शान पर चढ़ा रहा है तथा अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा है। छुरी की धार काफी थी, किन्तु लगता है, वह छुरी के साथ अपनी भावना भी शान पर चढ़ा रहा था, इसी कारण उसका शान चढ़ाना खतम नहीं हो रहा है। पत्थर पर घिसने से तेज छुरी हिस् हिस् की ध्वनि करके हिंसा की लालसा में तप्त होती जा रही है। अंधकार के बीच अंधकार की नदी बही चली जा रही थी। संसार के ऊपर से अँधेरी रात के पहर बहे चले जा रहे थे। आकाश के ऊपर से अँधेरे घने मेघों की धारा बही जा रही थी।

अंत में जब मूसलाधार बारिश पड़नी आरम्भ हुई, तब जयसिंह की चेतना जगी। तप्त छुरी म्यान में रख कर उठ कर खड़ा हो गया। पूजा का समय निकट आ गया है। उसे शपथ की बात याद आ गई। और एक दण्ड भी विलम्ब करना संभव नहीं।

मंदिर आज सहस्र दीपों से आलोकित है। त्रयोदश देवताओं के मध्य खड़ी काली नर-रक्त के लिए जिह्वा फैलाए हुए है। मंदिर के सेवकों को विदा करके चतुर्दश देव-मूर्तियों के सम्मुख रघुपति एकला बैठा है। उसके सामने एक दीर्घकाय खाँडा है। नग्न उजला खड्ग दीपालोक में चमचमाते हुए दृढ़ वज्र के समान देवी के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा है।

पूजा अर्ध-रात्रि में है। समय निकट है। रघुपति अत्यंत बेचैन हृदय से जयसिंह की प्रतीक्षा कर रहा है। सहसा तूफान की भाँति हवा चल कर मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई। हवा में मंदिर की सहस्र दीप-शिखाएँ काँपने लगीं, नग्न खड्ग पर विद्युत खेलने लगी। चतुर्दश देवताओं और रघुपति की छायाएँ मानो जीवित होकर दीप-शिखाओं के नृत्य की ताल-ताल पर मंदिर की दीवार पर नाचने लगीं। एक नर-कपाल तूफान की हवा में इधर-उधर लुढ़कने लगा। दो चमगादड़ मंदिर में आकर सूखे पत्तों के समान एक के पीछे एक उडते घूमने लगे। उनकी छाया दीवार पर उड़ने लगी।

दूसरा पहर आ गया। पहले निकट, बाद में दूर-दूरांतर पर श्रृगाल बोलने लगे। तूफान की हवा भी उनके संग मिल कर हू हू करके रुदन करने लगी। पूजा का समय हो गया। रघुपति अमंगल की आशंका में अत्यंत बेचैन हो उठा।

उसी समय जीवंत तूफानी बारिश की बिजली के समान जयसिंह ने अचानक रात के अंधकार में से मंदिर के उजाले में प्रवेश किया। देह लंबी चादर से ढकी है, सर्वांग से बह कर बारिश की धार गिर रही है, साँस तेजी से चल रही है, चक्षु-तारकों में अग्नि-कण जल रहे हैं।

रघुपति ने उसे पकड़ कर कान के पास मुँह लाकर कहा, "लाए हो राज-रक्त?"

जयसिंह उसका हाथ छुड़ा कर ऊँचे स्वर में बोला, "लाया हूँ। राज-रक्त लाया हूँ। आप हट कर खड़े होइए, मैं देवी को निवेदन करता हूँ।"

आवाज से मंदिर काँप उठा।

काली की मूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर कहने लगा, "तो क्या तू सचमुच संतान का रक्त चाहती है, माँ! राज-रक्त के बिना तेरी तृषा नहीं मिटेगी? मैं जन्म से ही तुझे माँ पुकारता आ रहा हूँ, मैंने तेरी ही सेवा की है, मैंने और किसी की ओर देखा ही नहीं, मेरे जीवन का और कोई उदेश्य नहीं था। मैं राजपूत हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मेरे प्रपितामह राजा थे, मेरे मातामह वंशीय आज भी राजत्व कर रहे हैं। तो, यह ले अपनी संतान का रक्त, ले, यह ले अपना राज-रक्त।" चादर देह से गिर पड़ी। कटिबंध से छुरी बाहर निकाल ली - बिजली नाच उठी - क्षण भर में ही वह छुरी अपने हृदय में आमूल भोंक ली, मृत्यु की तीक्ष्ण जिह्वा उसकी छाती में बिंध गई। मूर्ति के चरणों में गिर गया; पाषाण-प्रतिमा विचलित नहीं हुई।

रघुपति चीत्कार कर उठा - जयसिंह को उठाने की चेष्टा की, उठा नहीं पाया। उसकी मृत देह पर पड़ा रहा। मंदिर के सफेद पत्थरों पर रक्त बहने लगा। धीरे-धीरे एक-एक करके दीपक बुझ गए। अंधकार में पूरी रात एक प्राणी के साँस की ध्वनि सुनाई पडती रही; रात के तीसरे पहर तूफान थम कर चारों तरफ सन्नाटा छा गया। रात के चौथे पहर बादल के छिद्र से चन्द्रमा के प्रकाश ने मंदिर में प्रवेश किया। चन्द्रालोक जयसिंह के पाण्डुवर्ण चेहरे पर पड़ा, चतुर्दश देवता सिरहाने खड़े उसे ही देखने लगे। प्रभात में जब वन में पक्षी बोले, तब रघुपति मृत-देह छोड़ कर उठ गया।

सोलहवाँ परिच्छेद

राजा के आदेश के अनुसार नक्षत्रराय प्रजा के असंतोष का कारण खोजने के लिए प्रभात-काल में स्वयं बाहर निकला। उसे चिन्ता होने लगी, मंदिर कैसे जाए! रघुपति के सामने पड़ जाने पर वह कैसा सकपका जाता है, अपने को नियंत्रित नहीं कर पाता। रघुपति का सामना करने की उसकी कोई इच्छा नहीं है। इसीलिए उसने निश्चय किया है, रघुपति की नजर बचा कर गुप्त रूप से जयसिंह के कमरे में जाकर उससे विशेष विवरण जाना जा सकता है।

नक्षत्रराय ने धीरे-धीरे जयसिंह के कमरे में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही सोचा, लौट पाए, तो मुक्ति मिले। देखा, जयसिंह की पुस्तकें, उसके कपड़े, उसकी गृह-सज्जा बिखरी पड़ी है और रघुपति बीच में बैठा है। जयसिंह नहीं है। रघुपति की लाल आँखें अंगारे की तरह जल रही हैं, उसके केश बिखरे हुए हैं। उसने नक्षत्रराय को देखते ही मुट्ठी में मजबूती के साथ उसका हाथ पकड़ लिया। उसे बलपूर्वक जमीन पर बैठा लिया। नक्षत्रराय के प्राणों पर बन आई। रघुपति अपने अंगार-नेत्रों से नक्षत्रराय के मर्म-स्थान तक को दग्ध करके पागल की तरह बोला, "रक्त कहाँ है?"

नक्षत्रराय के हृत्पिंड में रक्त की तरंगें उठने लगीं, मुँह से शब्द नहीं निकले।

रघुपति उच्च स्वर में बोला, "कहाँ है, तुम्हारी प्रतिज्ञा? कहाँ है, रक्त?"

नक्षत्रराय हाथ हिलाने लगा, पैर हिलाने लगा, बाएँ सरक कर बैठ गया, कपड़े का किनारा पकड़ कर खींचने लगा - उसका पसीना बहने लगा, वह सूखे मुँह से बोला, "ठाकुर..."

रघुपति ने कहा, "इस बार माँ ने स्वयं खड्ग उठा लिया है, इस बार चारों ओर रक्त की धारा बहेगी... इस बार तुम्हारे वंश में एक बूँद रक्त बाकी नहीं बचेगा, तब देखना नक्षत्रराय का 'भ्रातृ-स्नेह!' "

" ' भ्रातृ-स्नेह!' हा हा! ठाकुर..."

नक्षत्रराय की हँसी और नहीं निकली, गला सूख गया।

रघुपति ने कहा, "मुझे गोविन्दमाणिक्य का रक्त नहीं चाहिए। जिसे गोविन्दमाणिक्य संसार में प्राणों से अधिक चाहता हो, मुझे वही चाहिए। उसका रक्त लेकर मैं गोविन्दमाणिक्य के शरीर पर मलना चाहता हूँ - उसका वक्ष-स्थल रक्तवर्ण हो जाएगा - उस रक्त का चिह्न किसी भी तरह मिटेगा नहीं। यह देखो,

ध्यान से देखो।" कहते हुए उत्तरीय हटा दिया, उसकी देह रक्त में लिपटी है, उसके वक्ष-स्थल पर जगह-जगह रक्त जमा हुआ है।

नक्षत्रराय सिहर उठा। उसके हाथ-पाँव काँपने लगे। रघुपति बँधी मुट्ठी में नक्षत्रराय का हाथ दबा कर बोला, "वह कौन है? कौन गोविन्दमाणिक्य को प्राणों से भी अधिक प्रिय है? किसके चले जाने पर गोविन्दमाणिक्य की आँखों में यह संसार श्मशान हो जाएगा, उसके जीवन का उद्देश्य नष्ट हो जाएगा? प्रात: शैया से उठते ही उसे किसका चेहरा याद आता है, किसकी याद को साथ लेकर वहा रात को सोने जाता है, उसके हृदय-नीड़ को पूरी तरह भर कर कौन विराज रहा है? कौन है वह? क्या वह तुम हो?"

कह कर, जैसे छलाँग लगाने के पूर्व व्याघ्र काँपते हुए हिरन के बच्चे की ओर एकटक देखता है, वैसे ही रघुपति ने नक्षत्र की ओर देखा। नक्षत्रराय हडबड़ा कर बोला, "नहीं, मैं नहीं हूँ।" परन्तु किसी भी तरह रघुपति की मुट्ठी नहीं छुड़ा पाया।

रघुपति ने कहा, "तो बताओ, वह कौन है?"

नक्षत्रराय ने कह डाला, "वह ध्रुव है।"

रघुपति बोला, "ध्रुव कौन?"

नक्षत्रराय, "वह एक बालक है..."

रघुपाई बोला, "मैं जानता हूँ, उसे जानता हूँ। राजा की अपनी संतान नहीं है, उसे ही संतान की तरह पाल रहा है। पता नहीं, अपनी संतान को लोग किस तरह प्यार करते हैं, किन्तु पालित संतान को प्राणों से अधिक प्यार करते हैं, यह जानता हूँ। अपनी सम्पूर्ण संपदा की अपेक्षा राजा को उसका सुख अधिक प्रतीत होता है। मुकुट अपने सिर की अपेक्षा उसके सिर पर देख कर राजा को अधिक आनंद होता है।"

नक्षत्रराय आश्चर्य में पड़ कर बोला, "सही बात है।"

रघुपति ने कहा, "बात सही नहीं है, तो क्या है! क्या मुझे पता नहीं कि राजा उसे कितना प्यार करता है! क्या मैं समझ नहीं पाता! मुझे भी वही चाहिए।"

नक्षत्रराय मुँह फाड़े रघुपति की ओर देखता रहा। अपने मन में बोला, 'वही चाहिए।'

रघुपति ने कहा, "उसे लाना ही होगा... आज ही लाना होगा... आज रात ही चाहिए।"

नक्षत्रराय ने प्रतिध्वनि की भाँति कहा, "आज रात ही चाहिए।"

रघुपति ने कुछ देर नक्षत्रराय के चेहरे पर देख कर स्वर को धीमा करके कहा, "यह बालक ही तुम्हारा शत्रु है, जानते हो? तुम राज-वंश में जन्मे हो - कहीं से एक अज्ञात कुलशील बालक तुम्हारे सिर से मुकुट छीन लेने को आ गया है, यह पता है? जो सिंहासन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था, उसी सिंहासन पर उसके लिए स्थान निर्धारित हो गया है, क्या दो आँखें रहते हुए भी यह नहीं देख पा रहे हो!"

नक्षत्रराय के लिए ये सारी बातें नई नहीं हैं। उसने भी पहले ऐसा ही सोचा था। गर्वपूर्वक बोला, "वह क्या और बताना पड़ेगा ठाकुर! क्या मैं इसे देख नहीं पाता!"

रघुपति ने कहा, "तब और क्या! उसे लाकर दे दो। तुम्हारे सिंहासन की बाधा दूर कर दूँ। ये कुछ पहर किसी तरह काट लूँगा, उसके बाद... तुम कब लाओगे?"

नक्षत्रराय - "अँधेरा हो जाने पर।"

रघुपति जनेऊ स्पर्श करके बोला, "अगर न ला पाए, तो ब्राह्मण का शाप लगेगा। वैसा होने पर, जिस मुँह से तुम प्रतिज्ञा बोल कर उसका पालन नहीं करोगे, तीन रातें बीतने के पहले ही उसी मुख के मांस को शकुनी *(एक छोटी चिड़िया)* नोच-नोच कर खाएँगे।"

सुनते ही नक्षत्रराय ने चौंक कर चेहरे पर हाथ फिराया - कोमल मांस पर शकुनी की चोच पड़ने की कल्पना उसे नितांत दुस्सह अनुभव हुई। रघुपति को प्रणाम करके वह जल्दी से विदा हो लिया। उस कमरे से प्रकाश में, हवा में और जन-कोलाहल में पहुँच कर नक्षत्रराय ने पुनर्जीवन पाया।

सतरहवाँ परिच्छेद

ध्रुव उसी दिन शाम को नक्षत्रराय को देखते ही "चाचा" पुकारते हुए दौड़ा हुआ आया, छोटे-छोटे दोनों हाथ उसके गले में डाल कर, उसके कपोल से कपोल छुआ कर, मुँह के पास मुँह ले गया। धीरे से बोला, "चाचा।"

नक्षत्र ने कहा, "छी:, ऐसी बात नहीं कहते, मैं तुम्हारा चाचा नहीं हूँ।"

ध्रुव अब तक उसे हमेशा चाचा कहता चला आ रहा था, आज अचानक मना सुन कर वह भारी आश्चर्य में पड़ गया। कुछ देर गंभीर चेहरा बनाए बैठा रहा; उसके बाद नक्षत्र की ओर बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर बोला, "तुम कौन हो?"

नक्षत्रराय ने कहा, "मैं तुम्हारा चाचा नहीं हूँ।"

सुन कर ध्रुव को अचानक बहुत हँसी आई - इससे बड़ी असंभव बात इसके पहले कभी नहीं सुनी थी; वह हँसते हुए बोला, "तुम चाचा हो।" नक्षत्र जितना मना करने लगा, वह उतना ही कहने लगा, "तुम चाचा हो।" उसकी हँसी भी उतनी ही बढ़ने लगी। वह नक्षत्रराय को चाचा कह कर चिढ़ाने लगा। नक्षत्र बोला, "ध्रुव, तुम अपनी दीदी को देखने जाओगे?"

ध्रुव जल्दी से नक्षत्र का गला छोड़ते हुए खड़ा होकर बोला, "दीदी कहाँ है?"

नक्षत्र ने कहा, "माँ के पास।"

ध्रुव ने कहा, "माँ कहाँ है?"

नक्षत्र, "माँ एक जगह पर है। मैं तुम्हें वहाँ लेकर जा सकता हूँ।"

ध्रुव ने ताली बजाते हुए पूछा, "कब ले जाओगे चाचा?"

नक्षत्र, "इसी समय।"

ध्रुव आनंद में चीत्कार करते हुए नक्षत्र के गले से जोर से लिपट गया; नक्षत्र उसे गोद में उठा कर, चादर से ढक कर गुप्त द्वार से बाहर निकल गया।

आज रात भी लोगों का बाहर निकलना निषिद्ध है। इसी कारण मार्ग में न प्रहरी हैं, न पथिक। आकाश में पूर्ण चन्द्रमा है।

नक्षत्रराय मंदिर पहुँच कर ध्रुव को रघुपति के हाथों में सौंपने को तैयार हो गया। ध्रुव रघुपति को देख कर ताकत के साथ नक्षत्रराय से चिपट गया, किसी भी तरह छोड़ना नहीं चाहा। रघुपति ने उसे बलपूर्वक छीन लिया। ध्रुव 'चाचा' पुकारते हुए रो पड़ा। नक्षत्रराय की आँखों में आँसू आ गए, लेकिन रघुपति के सामने हृदय की यह दुर्बलता दिखाते हुए उसे भारी लज्जा आने लगी। उसने समझ लिया कि जैसे वह पत्थर का बना है। तब ध्रुव रोते-रोते 'दीदी' 'दीदी' पुकारने लगा, किन्तु दीदी नहीं आई। रघुपति

ने वज्र-स्वर में धमकाया। डर के मारे ध्रुव का रोना बंद हो गया। उसका रुदन केवल सिसकियों में बाहर आने लगा। चतुर्दश देव-मूर्तियाँ देखती रहीं।

गोविन्दमाणिक्य रात में स्वप्न में क्रंदन सुन कर जाग पड़े। सहसा सुना, कोई उनकी खिड़की के नीचे कातर स्वर में पुकार रहा है, "महाराज! महाराज!"

राजा ने जल्दी से उठ कर चन्द्रमा के प्रकाश में देखा, ध्रुव का चाचा, केदारेश्वर है। पूछा, "क्या हुआ?"

केदारेश्वर बोला, "महाराज, मेरा ध्रुव कहाँ है?"

राजा ने कहा, "क्यों, अपनी शैया पर नहीं है?"

"नहीं।"

केदारेश्वर कहने लगा, "दोपहर के बाद से ध्रुव को न देख पाने के कारण, पूछने पर युवराज नक्षत्रराय के सेवक ने बताया, ध्रुव अंत:पुर में युवराज के पास है। सुन कर मैं निश्चिन्त था। बहुत रात होती देख मुझे आशंका हुई; खोजने पर पता चला, युवराज नक्षत्रराय महल में नहीं हैं। मैंने महाराज के साथ भेंट करने की प्रार्थना के लिए बहुत कोशिशें कीं, लेकिन प्रहरियों ने किसी भी तरह मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया... इसी कारण खिड़की के नीचे से महाराज को पुकारा, आपकी नींद तोड़ दी है - मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिए।"

राजा के मन में एक विचार विद्युत की भाँति कौंध गया। उन्होंने चार प्रहरियों को पुकारा, कहा, "सशस्त्र मेरा अनुसरण करो।"

एक बोला, "महाराज, आज रात मार्ग में बाहर निकलना निषिद्ध है।"

राजा बोले, "मैं आदेश दे रहा हूँ।"

केदारेश्वर साथ जाने को तैयार हुआ, राजा ने उसे लौट जाने को कह दिया। राजा चन्द्रालोक में निर्जन मार्ग पर मंदिर की ओर चल पड़े।

मंदिर का द्वार अचानक खुला, तो दिखाई पड़ा, नक्षत्र और रघुपति खड्ग सम्मुख रखे मदिरापान कर रहे हैं। प्रकाश अधिक नहीं है, केवल एक दीपक जल रहा है। ध्रुव कहाँ है? ध्रुव काली की मूर्ति के पैरों के निकट लेटे-लेटे सो गया है - उसके कपोलों पर आँसुओं की रेखा सूख गई है, दोनों होठ तनिक खुल गए हैं, चेहरे पर भय नहीं,

चिन्ता नहीं - मानो यह पाषाण-शैया नहीं है, वह दीदी की गोद में सो रहा है। मानो दीदी ने चूम कर उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिए हैं।

मदिरा पीकर नक्षत्र की हिम्मत खुल गई थी, किन्तु रघुपति स्थिर बैठा पूजा के लग्न की प्रतीक्षा कर रहा था - नक्षत्र के प्रलाप पर जरा भी ध्यान नहीं दे रहा था। नक्षत्र कह रहा था, "ठाकुर, तुम मन-ही-मन डर रहे हो। तुम सोच रहे हो, मैं भी डर रहा हूँ। कोई डर नहीं ठाकुर! डर किसका! डर किसको! मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम क्या समझते हो, राजा से डरता हूँ! मैं शाहशुजा से नहीं डरता, मैं शाहजहाँ से नहीं डरता। ठाकुर, तुमने कहा क्यों नहीं - मैं राजा को पकड़ लाता, देवी को संतुष्ट कर दिया जाता। इतने- से लड़के का रक्त ही कितना होगा!"

उसी समय मंदिर की दीवार पर परछाईं पड़ी। नक्षत्रराय ने पीछे देखा - राजा। क्षण भर में नशा हिरन हो गया। अपनी परछाईं से भी ज्यादा काला पड़ गया। सोते हुए ध्रुव को तेजी से गोदी में उठा कर गोविन्दमाणिक्य ने प्रहरियों को आदेश दिया, "इन दोनों लोगों को बंदी बनाओ।"

चार प्रहरियों ने रघुपति और नक्षत्रराय के दोनों हाथ पकड़ लिए। ध्रुव को छाती में दबा कर राजा ज्योत्स्नालोक में निर्जन मार्ग से महल लौट आए। उस रात रघुपति और नक्षत्रराय कारागार में रहे।

अठारहवाँ परिच्छेद

अगले दिन न्याय। न्यायालय में लोगों की भीड़। न्यायाधीश के आसन पर राजा विराजमान हैं, सभासद चारों ओर बैठे हैं। दोनों बंदी सामने हैं। किसी के भी हाथों में हथकड़ी नहीं हैं। केवल सशस्त्र प्रहरी उन्हें घेरे हुए हैं - रघुपति पाषाण-मूर्ति की भाँति खड़ा है, नक्षत्रराय का सिर झुका हुआ है।

रघुपति का दोष सिद्ध करते हुए राजा उससे बोले, "तुम्हें क्या कहना है?"

रघुपति ने कहा, "आपको मेरा न्याय करने का अधिकार नहीं है।"

राजा ने कहा, "तो तुम्हारा न्याय कौन करेगा?"

रघुपति, "मैं ब्राह्मण हूँ, मैं देव-सेवक हूँ, मेरा न्याय देवता करेंगे।"

राजा, "पाप का दण्ड और पुण्य का पुरस्कार देने के लिए संसार में देवताओं के सहस्रों अनुचर हैं। हम भी उन्हीं में से एक हैं। इस विषय में मैं तुम्हारे साथ बहस नहीं करना चाहता - मैं पूछ रहा हूँ, तुमने कल शाम को बलि की मंशा से एक बालक का अपहरण किया था या नहीं!"

रघुपति ने कहा, "हाँ।"

राजा ने कहा, "तुम अपराध स्वीकार करते हो?"

रघुपति, "अपराध! किस बात का अपराध! मैं माँ के आदेश का पालन कर रहा था, माँ का कार्य कर रहा था, तुमने उसमें बाधा पहुँचाई - अपराध तुमने किया है? मैं तुम्हें माँ के सामने अपराधी घोषित करता हूँ, वे तुम्हारा न्याय करेंगी।"

राजा ने उसकी बात का कोई उत्तर न देकर कहा, "मेरे राज्य का विधान है, जो व्यक्ति देवता के नाम पर बलि देगा अथवा देने की कोशिश करेगा, उसे निर्वासन का दण्ड दिया जाएगा। मैंने वही दण्ड तुम्हारे लिए निर्धारित किया है। तुम आठ वर्ष के लिए निर्वासित कर दिए गए हो। तुम्हें प्रहरी मेरे राज्य के बाहर छोड़ आएँगे।"

प्रहरी रघुपति को सभा-गृह से ले जाने को तैयार हो गए। रघुपति ने उनसे कहा, "रुक जाओ।" राजा की ओर देख कर बोला, "तुम्हारा न्याय पूरा हुआ, अब मैं तुम्हारा न्याय करूँगा, ध्यान दो। चतुर्दश देवताओं की पूजा में दो रात, जो कोई रास्ते में बाहर निकलेगा, वह पुरोहित के द्वारा दण्डित होगा, यही हमारे मंदिर का विधान है। इसी प्राचीन विधान के अंतर्गत तुम मेरे समक्ष दण्ड के भागी हो।"

राजा ने कहा, "मैं तुम्हारा दण्ड भोगने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

सभासद बोले, "इस अपराध के लिए केवल अर्थ-दण्ड दिया जा सकता है।"

पुरोहित बोला, "मैं तुम पर दो लाख मुद्रा का दण्ड लगाता हूँ। इसी समय भरना होगा।"

राजा ने कुछ देर सोचा, फिर बोले, "तथास्तु।" कोषाध्यक्ष को बुला कर दो लाख मुद्राओं का आदेश कर दिया। प्रहरी रघुपति को बाहर ले गए।

रघुपति के चले जाने पर राजा ने नक्षत्रराय की ओर देख कर दृढ़ स्वर में कहा, "नक्षत्रराय, तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो या नहीं!"

नक्षत्रराय बोला, "महाराज, मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।"

कह कर भागते हुए राजा के पैरों से लिपट गया।

महाराज विचलित हुए, कुछ देर तक बोल नहीं पाए। अंत में आत्म-संवरण करके कहा, "नक्षत्रराय, उठो, मेरी बात सुनो। मैं क्षमा करने वाला कौन होता हूँ? मैं अपने विधान से खुद बँधा हुआ हूँ। जिस प्रकार बंदी बँधा हुआ होता है, वैसे ही न्यायाधीश भी बँधा हुआ होता है। मैं एक ही अपराध के लिए एक व्यक्ति को दंड दूँ और एक व्यक्ति को क्षमा कर दूँ, यह कैसे संभव है? तुम ही फैसला करो।"

सभासद बोले, "महाराज, नक्षत्रराय आपका भाई है, अपने भाई को क्षमा कर दीजिए।"

राजा ने दृढ़ स्वर में कहा, "आप सब चुप रहिए। मैं जब तक इस आसन पर हूँ, तब तक न किसी का भाई हूँ, न किसी का बंधु।"

चारों ओर के सभासद चुप हो गए। सभा में सन्नाटा छा गया। राजा गंभीर स्वर में कहने लगे, "तुम सब सुन चुके हो - मेरे राज्य का विधान है, जो व्यक्ति देवता के नाम पर जीव-बलि देगा अथवा देने की कोशिश करेगा, उसे निर्वासन का दण्ड दिया जाएगा। नक्षत्रराय ने कल शाम को पुरोहित के साथ षड्यंत्र रच कर बलि की मंशा से एक बालक का अपहरण किया था। इस अपराध के सिद्ध हो जाने के आधार पर मैं उसके लिए आठ वर्ष के निर्वासन के दण्ड का निर्धारण करता हूँ।"

जिस समय प्रहरी नक्षत्रराय को ले जाने को तैयार हुए, तब राजा ने आसन से उतर कर नक्षत्रराय को आलिंगन में भर लिया; रुद्ध कंठ से कहा, "वत्स, केवल तुम्हारा ही दण्ड नहीं हुआ, मेरा भी दण्ड हो गया। न जाने पूर्व जन्म में क्या अपराध किया था। जब तक तुम बंधु-बांधवों से दूर रहो, तब तक भगवान तुम्हारे साथ रहें, तुम्हारा कल्याण करें।"

देखते-देखते समाचार फैल गया। अंत:पुर में रोना-धोना मच गया। राजा एकांत कक्ष का द्वार बंद करके बैठ गए। हाथ जोड़ कर कहने लगे, "प्रभु, अगर कभी मैं अपराध करूँ, तो मुझे क्षमा मत करना, मुझ पर तनिक भी दया मत करना। मुझे अपने पाप का दण्ड दो। पाप करके दण्ड को ढोया जा सकता है, किन्तु क्षमा का भार नहीं ढोया जा सकता, प्रभु!"

नक्षत्रराय के प्रति राजा के मन में दुगुना प्रेम जागने लगा। नक्षत्रराय का बचपन का चेहरा उन्हें याद आने लगा। उसने जो सब खेल किए थे, बातें की थीं, काम किए थे, वे एक-एक कर उनके मन में उभरने लगे। एक-एक दिन, एक-एक रात अपने सूर्यालोक में, अपने तारा खचित आकाश में शिशु नक्षत्रराय को लेकर उनके सम्मुख प्रकट हो गए। राजा की दोनों आँखों से आँसू झरने लगे।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

प्रहरियों ने जब निर्वासन के लिए तैयार रघुपति से पूछा, "ठाकुर, किस दिशा में जाएँगे," तो रघुपति ने उत्तर दिया, "पश्चिम की ओर जाऊँगा।"

नौ दिन तक पश्चिम की ओर यात्रा करने के बाद बंदी और प्रहरी ढाका शहर के आसपास आ पहुँचे। तब प्रहरी रघुपति को छोड़ कर राजधानी लौट आए।

रघुपति मन-ही-मन बोला, "कलियुग में ब्रह्म-शाप नहीं फलता, देखा जाए, ब्राह्मण में बुद्धि कितनी होती है! देखा जाए, गोविन्दमाणिक्य कैसा राजा है और मैं ही कैसा पुरोहित ठाकुर हूँ।"

त्रिपुरा की सीमा में मंदिर के कोने में मुगल राज्य के समाचार अधिक नहीं पहुँचते थे। इसी कारण रघुपति ढाका शहर पहुँच कर मुगलों की रीति-नीति और राज्य की अवस्था जानने का कुतूहली हुआ।

तब मुगल सम्राट शाहजहाँ का शासन-काल था। उनका तीसरा पुत्र, औरंगजेब दक्षिणापथ में बीजापुर-आक्रमण में नियुक्त था। उनका दूसरा पुत्र, शुजा बंगाल का अधिपति था, उसकी राजधानी राजमहल में थी। कनिष्ठ पुत्र, शहजादा मुराद गुजरात का शासनकर्ता है। ज्येष्ठ युवराज दारा राजधानी दिल्ली में ही रह रहा है। सम्राट की आयु सड़सठ वर्ष है। उनके बीमार होने के कारण दारा पर ही साम्राज्य का भार आ पड़ा है।

कुछ दिन ढाका में रह कर रघुपति ने उर्दू की शिक्षा प्राप्त की और अंत में राजमहल की ओर चल पड़ा।

जब तक राजमहल पहुँचा, तब तक भारतवर्ष में हल्ला मच चुका था। समाचार फैल गया कि शाहजहाँ मृत्यु-शैया पर लेटे हैं। इस समाचार को पाते ही शुजा सेना सहित

दिल्ली की ओर दौड़ पड़ा। सम्राट के चारों ही पुत्र मृत्यून्मुखी शाहाजहाँ के सिर से एकदम झपट्टा मार कर मुकुट उड़ा लेने की तैयारी कर रहे हैं।

ब्राह्मण तत्काल अराजक राजमहल को छोड़ कर शुजा का पीछा करने में लग गया। सेवक-वाहक आदि को विदा कर दिया। साथ में जो दो लाख रुपया था, उसे राजमहल के पास वाले एक निर्जन कोने में गाड़ दिया। उसके ऊपर एक निशान बना दिया। बहुत थोड़ा-सा रुपया साथ में ले लिया। जली हुई झोपड़ियों, छोड़ दिए गए गाँवों, रौंदी हुई फसलों को देखते हुए रघुपति निरंतर चलता रहा। रघुपति ने संन्यासी का वेश धारण कर लिया। लेकिन सन्यासी वेश के होते हुए भी आतिथ्य दुर्घट है। कारण, सैनिक टिड्डों के समान जिस भी रास्ते से गुजरे हैं, उसके दोनों ओर केवल दुर्भिक्ष विराज रहा है। सैनिक घोड़ों और हाथियों को खिलाने के लिए बिना पकी फसल काट ले गए हैं। किसानों के कुठलों में एक दाना भी नहीं बचा है। चारों ओर केवल लुटाई के अवशेष बिखरे हैं। अधिकांश लोग गाँव छोड़ कर भाग गए हैं। भाग्यवश जो एक-दो लोग दिखाई पड़ जाते हैं, उनके चेहरे पर हँसी नहीं है। वे भयभीत हिरन के समान सतर्क रहते हैं। किसी पर भी वे न विश्वास करते हैं, न दया करते हैं। निर्जन रास्ते के किनारे पेड़ों के नीचे हाथ में लाठी लिए दो-चार लोग बैठे दिखाई पड़ जाते हैं; पथिकों के शिकार के लिए वे पूरे दिन प्रतीक्षा करते रहते हैं। धूमकेतु के पीछे आने वाली उल्का-बारिश के समान दस्यु, सैनिकों के पीछे-पीछे लुटने से बचे हुए को लूट ले जाते हैं। यहाँ तक कि, मृत-देह के ऊपर श्रृगाल-श्वान के समान बीच-बीच में सैनिकों और दस्यु-दल में लड़ाई छिड़ जाती है। निष्ठुरता सैनिकों का खेल हो गई है, रास्ते के किनारे निरीह पथिक के पेट में खप् करके तलवार की हूल मार देने अथवा उसके सिर से पगड़ी के साथ थोड़ी-सी खोपड़ी उड़ा देने को वे साधारण उपहास भर समझते हैं। गाँव के लोगों को अपने से डरता हुआ देख कर वे परम कौतुक अनुभव करते हैं। लूटने के बाद गाँव के लोगों को उत्पीड़ित करके वे आनंद प्राप्त करते हैं। दो मान्य ब्राह्मणों को पीठ से पीठ जोड़ कर एक साथ बाँध कर दोनों की नाक में नसवार डाल देते हैं। दो घोड़ों की पीठ पर एक आदमी को चढ़ा कर दोनों घोड़ों को चाबुक मार देते हैं; दोनों घोड़े दो विपरीत दिशाओं में दौड़ जाते हैं, बीच में आदमी गिर जाता है, उसके हाथ-पाँव टूट जाते हैं। इस प्रकार वे रोजाना नए-नए खेलों का आविष्कार करते हैं। गाँव अकारण जला दिए जाते हैं। कहते हैं, बादशाह की शान में आतिशबाजी कर रहे हैं। सैनिकों के मार्ग में इस प्रकार के अत्याचारों के सैकड़ों-सैकड़ों चिह्न मौजूद हैं। यहाँ रघुपति को आतिथ्य मिलेगा कहाँ! कोई दिन निराहार, कोई दिन अल्पाहार में काटने लगा। रात के अँधेरे में एक टूटी परित्यक्त झोपड़ी में थका हुआ शरीर लेकर सो गया था, सुबह उठ कर देखा, एक सिर-हीन देह को पूरी रात तकिया बना कर

सोता रहा था। रघुपति ने एक दिन दोपहर में भूख लगने पर एक झोपड़ी में जाकर देखा, एक आदमी अपने टूटे संदूक पर उसकी कौली भरे पड़ा है - लगा, अपने लुटे हुए धन का शोक मना रहा था - निकट जाकर ठेलते ही वह लुढ़क कर गिर पड़ा। मात्र मृत देह, उसका जीवन बहुत पहले ही जा चुका था।

रघुपति एक दिन एक झोपड़ी में सोया हुआ है। रात व्यतीत नहीं हुई है, कुछ देर है। तभी धीरे-धीरे दरवाजा खुल गया। शरद के चन्द्रालोक के साथ-साथ कुछ परछाइयाँ भी झोपड़ी में आ पड़ीं। फिस् फिस् की आवाज सुनाई पड़ी। रघुपति चौंक कर उठ बैठा।

उसके उठते ही कई स्त्री-कंठ डरते हुए बोल पड़े, "उई माँ री!" एक पुरुष आगे बढ़ कर बोला, "कौन है रे?"

रघुपति ने कहा, "मैं ब्राह्मण हूँ, पथिक। तुम लोग कौन हो?"

"यह घर हमारा है। हम घर छोड़ कर भाग गए थे। मुगल सैनिक चले गए हैं, सुन कर अब आए हैं।"

रघुपति ने पूछा, "मुगल सैनिक किस दिशा में गए हैं?"

उन्होंने कहा, "विजयगढ़ की ओर। अब तक तो विजयगढ़ के जंगल में प्रवेश कर गए होंगे।"

रघुपति और अधिक कुछ न बोल कर तत्क्षण यात्रा पर निकल पड़ा।

बीसवाँ परिच्छेद

विजयगढ़ का विशाल जंगल ठगों का अड्डा है। जो रास्ता जंगल में से होकर गुजरा है, उसके दोनों ओर कितने ही नर-कंकाल दबे हैं, उनके ऊपर केवल जंगली फूल खिल रहे हैं, और कोई निशान नहीं। जंगल में वट है, बबूल है, नीम है, सैकड़ों-सैकड़ों प्रकार की लताएँ और झाड़ियाँ हैं। जगह-जगह तलैया अथवा जलाशय की तरह दिखाई पड़ता है। लगातार पत्तों के सड़ने से उनका जल पूरी तरह हरा हो गया है। छोटी-छोटी टेढ़ी-मेढ़ी बटियाँ साँपों के समान इधर से, उधर से अँधेरे जंगल में प्रवेश कर रही हैं। पेड़ों की डाल-डाल, पात-पात पर लंगूर हैं। वट वृक्ष की शाखाओं से सैकड़ों-सैकड़ों जटाएँ और लंगूरों की पूँछें झूल रही हैं। भग्न मंदिर का प्रांगण शेफाली के सफेद-सफेद फूलों और लंगूरों के दाँतों की चमक से पूरी तरह ढका है। शाम को

बड़े-बड़े छतनार पेड़ों पर झुण्ड के झुण्ड तोतों के शोर से घना अंधकार मानो दीर्ण-विदीर्ण होता रहता है। आज इस विशाल जंगल में लगभग बीस हजार सैनिकों ने प्रवेश किया है। शाखा-प्रशाखाओं, लताओं-पत्तों, घासों-झाड़ियों से भरा यह विशाल जंगल तीक्ष्ण नख-चंचु वाले सैनिक बाजों का एकमात्र नीड़ लग रहा है। सैनिकों का जमावडा देख कर असंख्य कौवे झुण्ड बना कर काँव-काँव करते हुए आकाश में उड़ते घूम रहे हैं - हिम्मत करके डालों पर आकर नहीं बैठ रहे हैं। किसी तरह के शोर-शराबे के लिए सेनापति की मनाही है। सैनिक पूरे दिन चल कर शाम को जंगल में पहुँच कर सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके खाना पका रहे हैं और आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं - उनकी उसी गुन गुन से सारा जंगल गम गम कर रहा है, शाम को झींगुर की झंकार सुनाई नहीं पड़ रही है। पेड़ों के तनों से बँधे घोड़े बीच-बीच में खुरों से धूल उड़ा रहे हैं और हिनहिना रहे हैं - उससे सारा जंगल चौंक पड़ रहा है। भग्न मंदिर के निकट खाली स्थान पर शाहशुजा का शिविर लगा है। और सबका पड़ाव आज पेड़ों के नीचे ही है।

रघुपति को पूरे दिन लगातार चल कर जंगल में प्रवेश करते हुए रात हो गई है। अधिकांश सैनिक सन्नाटे में सो रहे हैं, थोड़े-से चुपचाप पहरा दे रहे हैं। बीच-बीच में कहीं-कहीं आग जल रही है - मानो अंधकार ने बडे कष्ट से नींद से भारी लाल आँखें खोल रखी हैं। रघुपति ने जंगल में पैर रखते ही मानो बीस हजार सैनिकों के श्वास-प्रश्वास को सुन लिया। जंगल हजारों पेड़ों की शाखाएँ फैलाए पहरा दे रहा है। जैसे धूसर मस्तक वाला उल्लू अपने सद्यजात शिशु पर पंख फैलाए बैठा रहता है, उसी प्रकार जंगल के बाहर की विराट रात्रि जंगल के भीतर की सघनतर रात्रि को दबाए उसे डैनों से ढक कर चुपचाप बैठी है - एक रात्रि जंगल के भीतर मुँह घुसाए सो रही है, एक रात्रि जंगल के बाहर सिर उठाए जाग रही है। उस रात्रि में रघुपति जंगल के किनारे सो रहा।

सुबह दो-चार खोंचे खाकर हड़बड़ाते हुए जाग गया। देखा, भरी दाढ़ी वाले पगड़ी बाँधे तूरानी सैनिक उससे विदेशी भाषा में कुछ कह रहे हैं; सुन कर उसने निश्चित अनुमान लगा लिया - गाली है। उसने भी बंग-भाषा में उन्हें साला बक दिया। वे लोग उसके साथ खींचातानी करने लगे।

रघुपति बोला, "मजाक सूझ रहा है?" किन्तु उनके व्यवहार से मजाक का कोई लक्षण प्रकट नहीं हुआ। वे उसे अकातर भाव से जंगल में खींच कर ले जाने लगे।

वह असाधारण असंतोष प्रकट करते हुए बोला, "खींचतान क्यों कर रहे हो? मैं खुद ही चल रहा हूँ। इतने रास्ते मैं आया किसलिए हूँ?"

सैनिक हँसने लगे और उसकी बाँग्ला बातों की नकल करने लगे। धीरे-धीरे उसके चारों ओर सैनिकों का बड़ा हुजूम इकट्ठा हो गया, उसे लेकर भारी हंगामा मचने लगा। उत्पीड़न की भी सीमा न रही। एक सैनिक ने एक गिलहरी की पूँछ पकड़ कर उसके मुँड़े सिर पर छोड़ दी - देखने की इच्छा थी कि फल समझ कर खाता है या नहीं! एक सैनिक उसकी नाक के सामने एक मोटे बेंत को टेढ़ा करके पकड़े उसके साथ-साथ चलने लगा, उसे छोड़ देता, तो रघुपति की नाक की उच्च महिमा के सम्पूर्णत: समूल लुप्त हो जाने की आशंका थी। सैनिकों की हँसी से जंगल गूँजने लगा। आज दोपर में युद्ध करना होगा, इसी कारण सुबह रघुपति को लेकर वे बहुत खेल रचाने लगे। खेल की इच्छा पूरी होने के बाद ब्राह्मण को शुजा के पास ले गए।

रघुपति ने शुजा को देख कर सलाम नहीं किया। वह देवता और स्व-वर्ण को छोड़ कर और किसी के सम्मुख कभी भी सिर नहीं झुकाता। सिर उठाए खड़ा रहा; हाथ उठा कर बोला, "शहंशाह की जय हो।"

शुजा मदिरा का प्याला लिए सभासदों के साथ बैठा था; आलस्य विजड़ित स्वर में नितांत उपेक्षा के भाव से कहा, "क्या, माजरा क्या है?"

सैनिक बोले, "जनाब, दुश्मन का जासूस छिप कर हमारी ताकत और कमजोरी का पता लगाने के लिए आया था; हम लोग उसे पकड़ कर हुजूर के पास ले आए हैं।"

शुजा ने कहा, "अच्छा अच्छा! बेचारा देखने आया है, उसे सब कुछ अच्छी तरह दिखा कर छोड़ दो। देश लौट कर कहानी सुनाएगा।"

रघुपति ने गलत-सलत हिन्दुस्तानी में कहा, "मैं सरकार के यहाँ काम की प्रार्थना करता हूँ।"

शुजा ने आलस्य भाव से हाथ हिला कर उसे जल्दी से चले जाने का संकेत किया। बोला, "गरम!" जो हवा कर रहा था, वह दुगुने जोर से हवा करने लगा।

दारा ने अपने पुत्र सुलेमान को राजा जयसिंह के अधीन शुजा के आक्रमण का प्रतिरोध करने भेजा है। उसकी विशाल सेना निकट पहुँच गई है, समाचार आ गया है। उसी कारण विजयगढ़ के किले पर अधिकार करके वहाँ सेना इकट्ठी करने के

लिए शुजा बेचैन हो गया है। किला और सरकारी खजाना शुजा के हाथों सौंप देने का प्रस्ताव लेकर दूत विजयगढ़ के अधिपति विक्रम सिंह के पास गया था। विक्रम सिंह ने उसी दूत से कहलवा भेजा, "मैं केवल दिल्लीश्वर शाहजहाँ और जगदीश्वर भवानीपति को जानता हूँ - शुजा कौन है? मैं उसे नहीं जानता।"

शुजा ने जड़ता भरे स्वर में कहा, "बड़ा बेअदब है! नाहक फिर लड़ाई करनी पड़ेगी। भारी झमेला है।"

रघुपति ने यह सब सुन लिया। सैनिकों के हाथ से छूटते ही विजयगढ़ की ओर चल पड़ा।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

विजयगढ़ पहाड़ पर है। विजयगढ़ का जंगल दुर्ग के आसपास जाकर समाप्त हो जाता है। रघुपति ने जंगल से बाहर निकल कर अचानक देखा, मानो पत्थर का विशाल दुर्ग नीले आकाश की अवहेलना करते हुए खड़ा है। अरण्य जिस प्रकार अपने सहस्र तरु-जाल से ढका है, उसी प्रकार दुर्ग अपने पत्थरों में जकड़ा है। अरण्य सावधान है, दुर्ग चौकन्ना है। अरण्य व्याघ्र के समान हाथ-पैर सिकोड़े पूँछ समेटे बैठा है, दुर्ग सिंह के समान केशर फुलाए गर्दन टेढ़ी किए खड़ा है। अरण्य जमीन से कान लगाए सुन रहा है, दुर्ग आकाश में सिर उठाए देख रहा है।

रघुपति के जंगल से बाहर आते ही दुर्ग के प्राचीर पर खड़े प्रहरी चौकन्ने हो गए। शंख बज उठे। प्रहरी नाद करते हुए नख-दन्त खोल कर भृकुटी तान कर खड़े हो गए। रघुपति जनेऊ दिखा कर हाथ उठा कर संकेत करने लगा। सैनिक सतर्क खड़े रहे। जब रघुपति दुर्ग की प्राचीर के निकट पहुँचा, तो सैनिकों ने पूछा, "तुम कौन हो?"

रघुपति ने कहा, "मैं ब्राह्मण, अतिथि।"

दुर्गाधिपति विक्रम सिंह परम धर्मनिष्ठ हैं। देवता, ब्राह्मण और अतिथि की सेवा में लगे रहते हैं। जनेऊ रहने पर दुर्ग में प्रवेश के लिए और कोई पहचानपत्र आवश्यक नहीं था। लेकिन आज युद्ध के दिन क्या करना उचित है, सैनिक नहीं सोच पाए थे।

रघुपति ने कहा, "तुम लोगों के शरण न देने की स्थिति में मुझे मुसलमानों के हाथों मरना पड़ेगा।"

विक्रम सिंह के कानों में जब यह बात पहुँची, तो उन्होंने ब्राह्मण को दुर्ग में शरण देने की अनुमति प्रदान कर दी। प्राचीर के ऊपर से बाँस की एक सीढ़ी उतारी गई, रघुपति दुर्ग में दाखिल हो गया।

दुर्ग में सभी युद्ध की प्रतीक्षा में व्यस्त हैं। वृद्ध चाचा साहब ने ब्राह्मण की आवभगत का भार स्वयं सँभाल लिया। उनका असली नाम खड्ग सिंह है, किन्तु कोई उन्हें पुकारता है, चाचा साहब, कोई पुकारता है, सूबेदार साहब - क्यों पुकारता है, इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता। संसार में उनका कोई भतीजा नहीं है, भाई भी नहीं है, उन्हें चाचा होने का कोई अधिकार अथवा इसकी दूर तक संभावना नहीं है और उनके जितने भतीजे हैं, उनका सूबा उनकी अपेक्षा अधिक नहीं है, किन्तु आज तक किसी ने उनकी उपाधि के सम्बन्ध में किसी प्रकार की आपत्ति अथवा संदेह प्रकट नहीं किया। जो बिना भतीजे के ही चाचा हैं, बिना सूबे के ही सूबेदार हैं, संसार की अनित्यता और लक्ष्मी के चपलता-बंधन द्वारा उनके पद से हट जाने की कोई आशंका नहीं है।

चाचा साहब आकर बोले, "वाह वा, यही तो हुआ ब्राह्मण!" कहते हुए भक्ति में डूब कर प्रणाम किया। रघुपति का गठन एक प्रकार से तेजस्वी दीपशिखा के समान था. जिसे अचानक देख कर पतंग न्योछावर हो जाते थे।

चाचा साहब संसार की आजकल की शोचनीय दशा पर दुखी होकर बोले, "ठाकुर, आजकल वैसे ब्राह्मण कितने मिलते हैं!"

रघुपति ने कहा, "बहुत कम।"

चाचा साहब ने कहा, "पहले ब्राह्मण के मुख में अग्नि थी, अब समस्त अग्नि ने जठर में शरण ले ली है।"

रघुपति ने कहा, "वह भी क्या पहले की तरह है?"

चाचा साहब ने सिर हिला कर कहा, "सही बात है। अगस्त्य मुनि ने जिस परिमाण में पान किया था, यदि उसी परिमाण में भोजन भी करते, तो जरा सोच कर देखिए।"

रघुपति ने कहा, "और भी दृष्टांत हैं।"

चाचा साहब, "हाँ, हैं ही तो! जम्भु मुनि की पिपासा की बात सुनी जाती है, उनकी भूख के बारे में कहीं ही लिखा नहीं है, लेकिन एक अनुमान लगाया जा सकता है।

हरीतकी खाने से ही कम खाया जाता है, ऐसी बात नहीं है, वे कितनी हरीतकियाँ प्रति दिन खाते थे, एक हिसाब रहने पर समझ सकता था।"

रघुपति ने ब्राह्मण के महात्म्य का स्मरण करके कहा, "नहीं साहब, आहार की ओर उनका विशेष ध्यान नहीं था।"

चाचा साहब जीभ दाँतों में दबाते हुए बोले, "राम राम, क्या कह रहे हैं ठाकुर? उन लोगों का जठरानल अत्यंत प्रबल था, इसका विशिष्ट प्रमाण है। देखिए ना, कालक्रम में और सारी अग्नियाँ बुझ गईं, होम की अग्नि भी और नहीं जलती, किन्तु..."

रघुपति ने तनिक क्षुब्ध होते हुए कहा, "होम की अग्नि और जलेगी कैसे? देश में घी रह कहाँ गया? नास्तिक सारी गायों को ठिकाने लगा रहे हैं, अब हव्य कहाँ मिलता है? होमाग्नि जले बिना ब्रह्मतेज और कब तक टिक सकता है?"

कहते हुए रघुपति अपनी जला डालने वाली शक्ति को बहुत अधिक अनुभव करने लगा।

चाचा साहब ने कहा, "सही कहा ठाकुर, गायों ने मर कर आजकल मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण करना आरम्भ कर दिया है, किन्तु उनसे घी पाने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती। दिमाग की पूरी तरह कमी है। ठाकुर का आगमन कहाँ से हो रहा है?"

रघुपति ने कहा, "त्रिपुरा की राजबाड़ी से।"

विजयगढ़ के बाहर स्थित भूगोल अथवा इतिहास के सम्बन्ध में चाचा साहब की साधारण-सी जानकारी थी। भारतवर्ष में विजयगढ़ के अतिरिक्त और कुछ जानने लायक है, उन्हें यह विश्वास भी नहीं है।

पूरी तरह अनुमान के आधार पर बोला, "अच्छा, त्रिपुरा के राजा बहुत बड़े राजा हैं?"

रघुपति ने इसका पूर्ण समर्थन किया।

चाचा साहब - "ठाकुर क्या करते हैं?"

रघुपति - "मैं त्रिपुरा का राजपुरोहित हूँ।"

चाचा साहब आँखें मींच कर सिर हिलाते हुए बोले, "आहा।" रघुपति के प्रति उनकी भक्ति अत्यधिक बढ़ गई।

"किसलिए आना हुआ?"

रघुपति ने कहा, "तीर्थ दर्शन के लिए।"

धूम की आवाज हुई। शत्रु पक्ष ने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया है। चाचा साहब हँस कर आँखें मिचमिचाते हुए बोले, "वह कुछ नहीं, ढेला फेंक रहा है।" विजयगढ़ पर चाचा साहब का विश्वास जितना दृढ़ है, विजयगढ़ के पत्थर उतने मजबूत नहीं हैं। विदेशी पथिक के दुर्ग में प्रवेश करते ही चाचा साहब उस पर पूरा अधिकार करके बैठ जाते हैं और विजयगढ़ के महात्म्य को उसके मन में बद्धमूल कर देते हैं। रघुपति त्रिपुरा की राजबाड़ी से आया है, ऐसा अतिथि हमेशा नहीं आता, चाचा साहब अत्यंत उल्लास में हैं। अतिथि के साथ विजयगढ़ के पुरातत्व के सम्बन्ध में चर्चा करने लगे। बोले, "ब्रह्मा का अण्ड और विजयगढ़ का दुर्ग लगभग एक ही समय उत्पन्न हुए तथा ठीक मनु के बाद से ही विक्रम सिंह के पूर्वज इस दुर्ग पर अधिकार जमाए चले आ रहे हैं, इस विषय में कोई संशय नहीं हो सकता।" इस दुर्ग को शिव का कौन-सा वर प्राप्त है तथा कार्तवीर्यार्जुन इस दुर्ग में किस प्रकार बंदी हुआ था, वह भी रघुपति से छिपा नहीं रहा।

संध्या समय समाचार मिला, शत्रु पक्ष दुर्ग को कोई हानि नहीं पहुँचा पाया है। उन्होंने तोपें लगाई थीं, किन्तु तोपों के गोले दुर्ग तक नहीं पहुँच सके। चाचा साहब ने हँस कर रघुपति की ओर देखा। रहस्य यही कि दुर्ग को शिव का जो अमोघ वर प्राप्त है, उसका इससे प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या हो सकता है। लगता है, स्वयं नंदी तोपों के गोलों को बीच में ही लपक ले गए, उनसे कैलास पर गणपति और कार्तिकेय कंदुक-क्रीड़ा करेंगे।

बाईसवाँ परिच्छेद

किसी प्रकार शाहशुजा को मुट्ठी में करना ही रघुपति का उद्देश्य था। उसने जैसे ही सुना, शुजा दुर्ग पर आक्रमण करने में जुटा है, वैसे ही सोच लिया, मित्र भाव से दुर्ग में प्रवेश करके किसी तरह दुर्ग पर आक्रमण करने में शुजा की सहायता करेगा। किन्तु ब्राह्मण का युद्ध-विग्रह से कोई लेना-देना था नहीं; सो, कैसे शुजा की सहायता की जा सकती है, कुछ भी नहीं सोच पाया।

अगले दिन फिर युद्ध आरम्भ हो गया। विरोधी पक्ष ने बारूद से दुर्ग के प्राचीर का थोड़ा-सा हिस्सा उड़ा दिया, किन्तु तेजी से गोली बरसाने के कारण दुर्ग में प्रवेश नहीं कर पाया। देखते ही देखते टूटे अंश की मरम्मत कर दी गई। आज बीच-बीच में दुर्ग

में गोली-गोले आकर गिरने लगे, दो-चार करके दुर्ग के सैनिक मरने और घायल होने लगे।

"ठाकुर, कोई डर नहीं, यह केवल खेल हो रहा है," कह कर चाचा साहब रघुपति को चारों ओर से दुर्ग दिखाते घूमने लगे। कहाँ अस्त्रागार है, कहाँ भंडार है, कहाँ घायलों का चिकित्सालय है, कहाँ कैदखाना है, कहाँ दरबार है, सब तन्न-तन्न करके दिखाने लगे और बार-बार रघुपति के चेहरे की ओर देखने लगे। रघुपति ने कहा, "विलक्षण कारखाना है। त्रिपुरा का दुर्ग इसके सामने नहीं टिक सकता। लेकिन साहब, छिप कर भागने के लिए त्रिपुरा के दुर्ग में एक आश्चर्यभरा सुरंग-मार्ग है, यहाँ उस प्रकार का कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है।"

चाचा साहब कुछ बोलने जा रहे थे, सहसा अपने को रोकते हुए कहा, "नहीं, इस दुर्ग में वैसा कुछ भी नहीं है।"

रघुपति ने नितांत आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "इतने विशाल दुर्ग में एक सुरंग-मार्ग नहीं, यह कैसी बात है!"

चाचा साहब ने तनिक कातर होकर कहा, "न हो, क्या ऐसा हो सकता है! अवश्य ही होगा, तब भी शायद हममें से किसी को पता नहीं है।"

रघुपति ने हँस कर कहा, "तब तो न होने के बराबर ही है। जब आप ही नहीं जानते, तो और कौन जानता होगा।"

चाचा साहब कुछ देर बहुत गंभीर होकर चुप रहे, उसके बाद सहसा "हरि हे, राम राम" कहते हुए चुटकी बजा कर जमुहाई ली, उसके बाद चेहरे पर, मूँछों पर, दाढ़ी पर एक-दो बार हाथ फेरते हुए अचानक बोले, "ठाकुर, आप तो पूजा-अर्चना में लगे रहते हैं, आपको बताने में कोई दोष नहीं है - दुर्ग में प्रवेश करने और दुर्ग से बाहर जाने के दो गुप्त मार्ग हैं, किन्तु बाहर के किसी व्यक्ति को उन्हें दिखाने का निषेध है।"

रघुपति ने किंचित संदेह के स्वर में कहा, "ठीक है, वह तो होगा ही।"

चाचा साहब ने देखा, दोष उन्हीं का है, एक बार 'नहीं' एक बार 'हाँ' बोलने पर लोगों को स्वाभाविक रूप से संदेह हो ही सकता है। विदेशी की आँखों में त्रिपुरा के दुर्ग के सामने विजयगढ़ किसी अंश में हीन हो जाए, यह चाचा साहब के लिए असहनीय है।

उन्होंने कहा, "ठाकुर, सोचता हूँ, आप त्रिपुरा से बहुत दूर हैं और आप ब्राह्मण हैं, आपका एकमात्र काम देवा-सेवा ही है, आपके द्वारा कोई बात खुलने की संभावना नहीं है।"

रघुपति ने कहा, "आवश्यकता क्या है साहब, संदेह हो, तो वह सब बात रहने दीजिए ना। मैं ब्राह्मण का बेटा हूँ, मुझे दुर्ग के समाचारों से क्या प्रयोजन!"

चाचा साहब जीभ दाँतों में दबाते हुए बोले, "अरे राम राम, आप पर फिर संदेह किस बात का। चलिए, एक बार दिखा लाता हूँ।"

इधर शुजा के सैनिकों के बीच सहसा अव्यवस्था मच गई। शुजा का शिविर जंगल में था, सुलेमान और जयसिंह की सेना ने अचानक आकर उन्हें बंदी बना लिया तथा छिप कर दुर्ग पर हमला करने वालों पर चढ़ाई कर दी। शुजा के सैनिकों ने लड़ाई किए बिना ही बीस तोपें पीछे फेंक कर तोड़ डालीं।

दुर्ग में धूम मच गई। विक्रम सिंह के पास सुलेमान का दूत पहुँचते ही उन्होंने दुर्ग का द्वार खोल दिया, स्वयं आगे बढ़ कर सुलेमान और राजा जयसिंह की अगवानी की। दिल्लीश्वर के सैनिकों तथा हाथी-घोड़ों से दुर्ग भर गया। निशान फहराने लगा, शंख और रणवाद्य बजने लगे तथा चाचा साहब की सफेद मूँछों के नीचे उजली हँसी भरपूर ढंग से खिल गई।

# राजर्षि - Rajashri in Hindi


1. राजर्षि भाग 1
2. राजर्षि भाग 2
3. राजर्षि भाग 3
4. राजर्षि भाग 4